कला शिक्षा की बुनियाद

देवी प्रसाद

"बच्चे की कला में सबसे सुन्दर उसकी 'गलतियाँ' होती हैं। जितनी अधिक मात्रा में ये गलतियाँ होती हैं, उतना ही आकर्षक उसका काम होता है। जितना ही उसका शिक्षक उन्हें हटाने की कोशिश करता है, उतना ही बच्चे का काम फीका, निर्धन और व्यक्तित्वहीन हो जाता है।"

- फ्रांज़ सिज़ेक

स्टेंसिल-प्रिंट, छात्र, 13 वर्ष

केवल सयानों के नज़रिए से बच्चों की शिक्षा-व्यवस्था को नहीं देखना चाहिए क्योंकि शिक्षा पाने वाला तो बालक है, सयाना नहीं। बच्चे की दृष्टि बड़ों की दृष्टि से काफी अलग होती है – इस तथ्य का ध्यान रखना ज़रूरी है। अगर बच्चा कुछ पसन्द करता है तो वह केवल आनन्द, सन्तोष, मान्यता और अनुमोदन पाने के लिए। उसका मन इस भावना से परिपूर्ण होता है कि जो काम तुम कर सकते हो, उसे मैं क्यों नहीं कर सकता। वह यह भी दिखाना चाहता है कि वह बड़ों के जैसा ही है। हाँ, हर बात में नहीं, पर कुछ चुने हुए मामलों में, जैसे कि अपनी खोज की वृत्ति में।

अनुभव के द्वारा सीखना

बच्चे की प्रवृत्ति हर समय खोज करने की होती है। प्रत्येक वस्तु उसका ध्यान आकर्षित करती है। वह उस वस्तु को देखकर, छूकर नया अनुभव प्राप्त करना चाहता है। वह जाँचना-परखना चाहता है। अगर उसे कुछ अच्छा लगता है तो उसे तब तक दोहराता रहता है जब तक उसका ध्यान किसी ऐसी नई चीज़ की ओर नहीं जाता जो काफी मज़ेदार हो या नई चुनौती देती हो। ऐसी चीज़ें या मौके जो बच्चों का ध्यान खींचते हैं, अक्सर उन पर बड़ों का ध्यान नहीं जाता।

इसका अर्थ यह हुआ कि दुनिया दो प्रकार की होती है - एक सयानों की और दूसरी बच्चों की, और इन दोनों के विषय और पद्धतियाँ भी अलग-अलग होते हैं। इस बात का यह अर्थ नहीं है कि जिस चीज़ की ओर बच्चे का ध्यान खिंचता है, वह सयानों को नहीं दिखती। वस्तु तो वही होती है, बल्कि तात्पर्य यह है कि उसका उपयोग, यहाँ तक कि उसका रूप और कोण जिससे वह देखी जा रही है, बच्चे के लिए अलग हो सकता है - और होता भी है।

यह बात इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगी - एक बार मैं लालटेन की रोशनी में पुस्तक पढ़ रहा था। उन दिनों सेवाग्राम में सूर्यास्त के बाद वही रोशनी का स्रोत था - वही हमारे पास था। मेरा बेटा, जो तब दो साल का था, मेरे पास बैठा था। हठात् लालटेन बुझ गई और मैं खीझ गया लेकिन पास बैठा बालक खिल-खिलाकर हँसने लगा। उसे बड़ा मज़ा आया। मुझे गुस्सा आया पर बालक को मज़ा। वस्तु वही थी और घटना भी वही। किन्तु दोनों पर प्रभाव अलग-अलग पड़ा। एक झुँझला गया और दूसरा आनन्दित हो उठा।

माँ-बाप जानते हैं कि छोटे बच्चे चीज़ें इधर-उधर करने में मज़ा लेते हैं। वे कीचड़ और रेत में खेलने में खुशी महसूस करते हैं। वे गन्दे हैं या नहीं, इसका खयाल उन्हें नहीं होता। हाँ, माता-पिता बच्चे को मरे हुए कीड़ों-मकोड़ों और मरे हुए केंचुओं को कुचलते, मारते देखकर परेशान हो जाते हैं। सच तो यह है कि बच्चों की सफाई और गन्दगी, अच्छा-बुरा, सुन्दर-कुरूप मापने की दृष्टि बड़ों से कहीं अलग प्रकार की होती है। न वे कीमती और उपयोगी गुणों के बारे में सामाजिक स्तर का बोध रखते हैं और न ही, उन्हें धार्मिक और आध्यात्मिक गुणों का बोध होता है। उन्हें इसका बोध भी नहीं होता कि ये सब करने का नतीजा क्या हो सकता है। उनकी तमन्ना बस यह होती है कि मज़ा कैसे लिया जाए। अगर बच्चों को कुछ करने में आनन्द आता है, कुछ खोज करने को मिलता है, तो वे उसी को दोहराते हैं।

हम यहाँ केवल कलात्मक पहलुओं

गुरुजी का घर, छात्रा

की ही चर्चा करेंगे – खास तौर पर ड्रॉइंग एवं चित्रकला और उनसे सम्बन्धित विषयों की। हम यह जानने की कोशिश करेंगे कि बच्चों की वह ख्वाहिश जो उन्हें खोज करने और आनन्द का अनुभव देती है, वह कैसे और कहाँ से आती है। यह तो तभी स्पष्ट हो जाता है, जब आप उनके सामने कागज़ और रंग रखकर कहते हैं – 'बनाओ चित्र'। आम तौर पर यह सुनते ही बच्चे कूद पड़ते हैं, कुछ संकोच करते हैं किन्तु वह आम तौर पर भीरुता के कारण ही।

अभी तो हम यह देखें कि बच्चे क्यों कला-प्रवृत्तियों की तरफ झुकते हैं और अपनी हार्दिक एवं मानसिक भावनाओं को प्रकट करने में आनन्द लेते हैं। हम आशा करते हैं कि यह कोशिश माता-पिता और शिक्षकों को बच्चों के मानस को समझने में मदद देगी।

प्रकृति के साथ मित्रता

सृजनात्मकता बच्चे को सदा प्रकृति के पास ले जाती है। वह महसूस करने लगता है कि वह भी प्रकृति का एक अंग है। चाहे चेतन हो या अचेतन, वह कुदरत के अपने चारों तरफ होने का भान करने लगता है। इससे एक तो बच्चे की अवलोकन की शक्ति का विकास होता है और दूसरा, चारों तरफ की दुनिया के बारे में समझ बढ़ती है। आँख की शक्ति शारीरिक शक्ति से सम्बन्धित होती है और इसके साथ-साथ उसका शैक्षिक और मनोवैज्ञानिक

विकास भी होता है। इस प्रकार बच्चे का पहला विकास शारीरिक स्वास्थ्य से और दूसरा, शिक्षा अनुभवों से सम्बन्धित होता है। इन दोनों का आपस में गहरा सम्बन्ध है और ये प्रवृत्तियाँ ज्ञान को भी बढ़ावा देती हैं।

जीवन का लावण्य और सुन्दरता

कला-शिक्षा की एक और देन है – जीवन में लावण्यबोध का विकास। कला-शिक्षा बालक के दिमाग और शरीर में छन्द और सामंजस्य पैदा करने का ऐसा काम करती है जिससे वे उसके जीवन का एक भाग हो जाते हैं।

कबड्डी, छात्रा, 12 वर्ष

प्लेटो ने लिखा है – "अच्छा साहित्य, अच्छा संगीत, आकार का सौन्दर्य और छन्द, ये सब अच्छे चरित्र के ऊपर निर्भर करते हैं। इससे मेरा यह मतलब नहीं कि दुनिया की जानकारी न हो, जिसे हम सभ्य तौर पर 'भलापन' कहते हैं, बल्कि मेरा मतलब उस बुद्धि से है जो सचमुच अच्छी विकसित हुई हो।" प्लेटो फिर पूछते हैं, "क्या इन सभी गुणों और सभी शक्तियों के लिए ज़रूरी नहीं है कि जवान अपना जीवन अच्छे तरीके से बिताएँ?" वे स्वयं उत्तर देते हैं, "उन्हें यह समझना चाहिए। रेखांकन एवं चित्रांकन में सन्तुलित गुण हैं। अन्य दस्तकारियों में भी गुण हैं। इन सबमें हमें सौन्दर्य और कुरूपता के दर्शन होते हैं।"

कुछ करने का आनन्द

एक बढ़ई का बच्चा दो साल से भी कम आयु से अपने माता-पिता को औज़ारों के साथ काम करते हुए देखता है। एक दिन वह एक हथौड़ी उठाता है और इधर-उधर पड़ी हुई चीज़ों को ठोंकता-पीटता है – शायद उसी तरह, जैसे वह अपने पिता को देखता है। क्या वह यह सोचता है कि वह कुछ बना रहा है? शायद ही उसके दिमाग में कोई ऐसा विचार हो। वह उन औज़ारों का उद्देश्य नहीं समझता। तब भी औज़ारों का 'इस्तेमाल' करने और हाथ-पैर व शरीर को काम में लगाने में उसे मज़ा

आता है। बच्चे की विभिन्न प्रवृत्तियाँ – शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक – उसे अलग-अलग प्रकार का अनुभव और सन्तोष देती हैं। बढ़ई के औज़ार, कागज़, कलम, रंग तथा कला के अन्य साधनों का इस्तेमाल अलग-अलग अनुभवों को जन्म देते हैं। साधनों का व्यवहार बच्चे को विभिन्न क्रियात्मक और रचनात्मक प्रवृत्तियों का भान कराता है।

सफलता की भावना

जब कोई चीज़ पूरी-पूरी बन जाती है तब बड़ों और बच्चों, सभी को आनन्द और सफलता की भावना का अनुभव होता है।

औज़ार, मिट्टी और चित्रकला वगैरह के साधन देखकर बच्चों को एक तरह की ललकार मिलती है। वे चीज़ें कहती हैं, "आओ तो, ज़रा देखें, तुम हमसे क्या कर सकते हो। कुछ बना सकते हो?" बच्चा ऐसी ललकार को अनदेखा या अनसुना नहीं करता और वह साधन उठाकर कुछ-न-कुछ गढ़ देता है और कहता है, "देखा, मैंने कर दिया!" यह विश्वास – 'मैंने कुछ कर दिखाया' – बच्चे में आत्मविश्वास के बीज बो देता है। इसका एक मज़ेदार उदाहरण तो तब देखते हैं जब बच्चों के काम की प्रदर्शनी लगती है। तब वे अपने चित्र के सामने काफी समय तक खड़ा रहकर, अपने चित्र को सराहते रहते हैं। मैंने यह अनुभव बच्चों की अनेक प्रदर्शनियों में किया है। कई बार तो देखा कि कुछ बच्चे केवल अपने चित्रों को ही निरखते रहते हैं और कुछ को तो दूसरों से यह कहते सुना, "देखो, यह मेरा चित्र है, बड़ा अच्छा है न?"

बच्चे की भाषा

हालाँकि, बच्चों की भाषा पर शायद इतनी पकड़ नहीं होती कि वे अपने दिल की बात पूरी-पूरी कह सकें, फिर भी वे उतनी और वैसी भाषा तो जानते हैं जो उनके दिल के भण्डार में रहती है, उन्हें अपने अनुभव प्रकट करने और अपनी कहानियाँ बता सकने में मदद करती है। असल बात तो यह है कि जो अनुभव और कहानियाँ उनके दिलों में हैं, वे अधिकतर उनके चाक्षुष यानी दृष्टि के इन्द्रीय अनुभव पर आधारित होती हैं।

उदाहरण के लिए, अगर कहानी में कोई पहाड़ी हो तो उसका चित्र मन में सांकेतिक रूप में बन जाता है, पहाड़ी शब्द के आधार पर नहीं। बच्चों को तभी सन्तोष मिलता है जब उनके आन्तरिक अनुभव और भावना को आधार मिले। उनके मन में उस आकार का नाम न भी हो किन्तु वह वस्तु अपने आकार से ही बच्चे की स्मृति में बैठ जाती है। उसी के द्वारा वे अपनी कहानी कहते हैं, इसलिए बच्चों का आत्मकथन अक्सर शब्दों

के द्वारा नहीं बल्कि मूर्ति-चित्र एवं ड्रामा के द्वारा प्रकट होता है। उन्हें इस प्रकार अपनी भावनाओं और अनुभवों को प्रकट करने में आनन्द और तृप्ति का अनुभव होता है।

विचारों का आदान-प्रदान

बड़े अपनी भावनाओं के प्रकटीकरण पर रोक लगा सकते हैं किन्तु बच्चों के लिए यह केवल कठिन ही नहीं बल्कि अस्वास्थ्यकर है। जब वे अपनी इच्छाओं, भावनाओं और विचारों को किसी अन्य को नहीं बता पाते, तो शब्दों के बदले आकार, चित्रकला, नाटक, संगीत और नृत्य की भाषा उनके लिए स्वाभाविक और स्वतःस्फूर्त साबित होती है। लिखित शब्दों की भाषा उनके ऊपर लादी जाती है। यह तो सयानों के विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम है। बच्चों के आत्मप्रकटन के लिए दृष्टि या दृश्य-शक्ति का इस्तेमाल करना उनकी पहली ज़रूरत होती है, और यह बच्चों के व्यक्तित्व के विकास और उनके आत्मविश्वास का रास्ता है।

नाटकीय पहलू

एक बच्चे ने मेरी चित्रकला की कक्षा में एक मोटरकार का चित्र बनाया। चित्र बनाते समय वह ऐसे पेश आता रहा जैसे कि वह कार चला रहा हो, मानो उसके हाथ मोटरकार के स्टीयरिंग व्हील पर घूम रहे हों। मुँह से भी कार के हॉर्न की तरह आवाज़ निकालता रहा। बच्चों की कला के सिलसिले में मुझे महसूस हुआ कि वे भी बड़े कलाकारों की तरह तात्कालिक साधनों से तादात्म्यता या जुड़ाव का अनुभव करते हैं।

मेरा आशय यह नहीं है कि बड़े कलाकारों और बच्चों के काम में कोई फर्क नहीं है, और न ही मैं कह रहा हूँ कि दोनों के बीच में विषय और उसके प्रति भावना में कोई भेद नहीं है, लेकिन यह समझना चाहिए कि 'अबोध' होने के कारण जो ज्ञान बालक के दिमाग में समा जाता है, वह आम तौर पर उसकी अबोधता के कारण ही वस्तुपरक नहीं होता। यह इसलिए कि बालक पर अभी तक सयानों के मूल्यों की दृष्टि की छाया नहीं पड़ी है।

कल्पना-शक्ति

इस बारे में बालक बड़ा प्रतिभाशाली होता है। उसकी कल्पना-शक्ति बहुत दूर दौड़ सकती है। बच्चे इस वृत्ति पर बहुत समय लगाते हैं - खास तौर से उन कहानियों पर, जो वे अपने माता-पिता और अन्य बड़ों से सुनते हैं और उन अनुभवों के कारण भी जो उनके मन में समा जाते हैं। उदाहरणार्थ, खेल-खेल में वे रेत के ढेर में एक सुराख बना लेते हैं और वह घर बन जाता है, पहाड़ी बन जाती है। कुछ पौधों की डालियाँ

ग्रीष्मकाल में मेरा गाँव, छात्र, 15 वर्ष

तोड़कर इधर-उधर घुसा दीं तो जंगल, फौज या मनुष्यों की भीड़, मोटरकार इत्यादि-इत्यादि रूप ले लेती हैं।

बड़ों को बच्चों के बनाए चित्र कीरम-काँटे दिखते हैं लेकिन उनके मन में अपनी बनाई हुई चीज़ें सूरज, चाँद, घर या जिसकी भी वे कल्पना करते हैं, बन जाती हैं। कलावृत्ति बालक की कल्पनाशक्ति को बढ़ाती है और अपने अनुभवों को दोहराने में मदद करती है।

आत्मप्रकटन

आत्मप्रकटन मनुष्य की एक आवश्यकता है और वह हमेशा जीवित रहती है। उन भावनाओं को प्रकट करने के लिए उसके पास कई तरीके हैं - कवि का कविता निर्माण, चित्रकार का चित्र बनाना, गायक का संगीत रचना। जैसे-जैसे भावनाएँ प्रकट होती हैं, वैसे-वैसे अन्य भावनाएँ सामने आ जाती हैं। इन्हें भी प्रकट होना चाहिए। अगर किसी की कुछ भावनाएँ उचित ढंग से और ठीक समय पर बाहर नहीं आतीं तो वे बासी और प्राणरोधक हो जाती हैं, जो व्यक्तित्व के लिए हानिकारक होती हैं। व्यक्ति के हृदय में जहाँ भावनाएँ वास करती हैं, वह एक ऐसे बरतन की तरह होता है जिसे बार-बार साफ करके रखने की ज़रूरत होती है। अगर वह 'कचरा' अधिक समय तक बन्द रहेगा तो वह सड़ जाएगा और

अनेक प्रकार की समस्याएँ पैदा करेगा। एक बात और है जिस पर ध्यान रखना ज़रूरी है कि उस बरतन में, जब तक वह खाली न हो जाए, नया कुछ नहीं समा सकता।

हम साधारण व्यक्तियों के लिए आवश्यक है कि एक ऐसा रास्ता खोजा जाए, जो नुकसानदेह नहीं बल्कि हमारी भावनाओं को पूरा करने में समर्थ हो। इसी सिलसिले में बच्चों में तो ऐसी प्रवृत्तियाँ जागृत करनी चाहिए जो उन्हें अपनी भावनाओं को प्रकट करना सिखाएँ।

इस प्रकार की सबसे स्वास्थ्यकर प्रवृत्तियाँ कला-प्रवृत्तियाँ हैं। इनके द्वारा आनन्द का भान होता है और सृजनात्मक विषयों की जानकारी मिलती है। एक कला शिक्षक होने के नाते मुझे खास तौर पर सात से ग्यारह साल के बच्चों के साथ काम करने में बड़ा आनन्द और आत्मसन्तुष्टि का अनुभव हुआ है। खास तौर पर जब वे आकर मुझे अपने चित्रों के विषय और अपने अनुभवों का बारीकी-से विवरण देते थे। जब नर्सरी के बालक आकर अपनी पाठशाला में बनाए कीरम-काँटों वाले चित्र दिखाते थे, तब तो अत्यन्त सुख का अनुभव होता था।

आक्रामक भावनाओं का निकास

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि यदि उग्रता समय पर मन से बाहर न निकले तो व्यक्ति और अधिक उग्र होकर कुंठित हो जाता है। अधिक कुंठित होने से उसकी उग्रता अपने और दूसरों के लिए बढ़ जाती है और हिंसा में बदल सकती है।

इस सिलसिले में एक ऐसा उदाहरण दिया जा सकता है जो स्कूलों और परिवारों में आम तौर पर पाया जाता है। सेवाग्राम की पाठशाला में एक ग्यारह साल का बालक था जिसमें ज़रूरत से ज़्यादा ऊर्जा थी, इतनी कि वह छोटे बच्चों को मारता था, तंग करता था। स्कूल का वातावरण एक स्वसंचालित छात्रावास का था जिसे उन्होंने स्वयं चुनकर बनाया था। हर महीने शिक्षक और विद्यार्थियों के चुनाव के आधार पर कमेटी बनती थी जो स्कूल की व्यवस्था को देखती थी, स्कूल को एक आत्मनिर्भर आवासीय समाज की तरह चलाती थी। उसकी अपनी रसोई थी जिसमें बालक और शिक्षक मिलकर काम करते थे। अलग-अलग प्रकार के काम को अदल-बदल करके किया जाता था।

रसोई में ईंधन के लिए लकड़ी का प्रयोग होता था जिसे कुल्हाड़ी से टुकड़े-टुकड़े करके चूल्हे में इस्तेमाल किया जाता था। एक बार इस काम की ज़िम्मेदारी लेने के लिए उसी बच्चे को उत्साहित किया गया, यह सोचकर कि इससे उसकी उग्रता को प्रकट करने का मौका मिलेगा। काम तो कठिन था पर इस बच्चे ने दो

और बच्चों को स्वयंसेवक के रूप में लिया। इस बच्चे ने बड़े आनन्द के साथ इस काम को किया और बड़ी जल्दी ही वह इस काम में माहिर हो गया। अपने 'चूल्हे के ईंधन' विभाग के मंत्री की हैसियत से वह उस्ताद माना जाने लगा और बड़ा आनन्दित रहने लगा। उसकी हिंसा-शक्ति को भी, लकड़ी काटने और फाड़ने के द्वारा, प्रकट होने का एक बड़ा कारगर रास्ता मिल गया। मन की शक्ति बढ़ी, साथ-साथ चित्रकला की कक्षा में राष्ट्रीय नायकों के चित्र भी बनाने लगा।

एक प्रयोग

इस लेख में मैंने कला-प्रवृत्तियों के कुछ पहलुओं पर नज़र डालने की कोशिश की है और बालकों के उन अनुभवों का ज़िक्र किया है जो उनके आनन्द से सम्बन्ध रखते हैं। इन अनुभवों से वे आत्मविश्वास और उपलब्धि प्राप्त करते हैं। अब मैं अपने एक और प्रयोग का अनुभव बताना चाहता हूँ। प्रयोग बारह से चौदह साल के बच्चों द्वारा पुस्तकें लिखने और उन्हें प्रकाशित करने का था। यह प्रयोग बच्चों की अनेक प्रकार की मानसिक भावनाओं और उनकी कल्पनाशीलता से जुड़ा हुआ था।

एक दोपहर की क्लास में एक बच्चे ने, जो कला-प्रवृत्तियों में विशेष रुचि रखता था, एक प्रश्न पूछा जो उसे कई दिनों से सता रहा था। वह था - लोग पुस्तकें कैसे लिखते हैं?

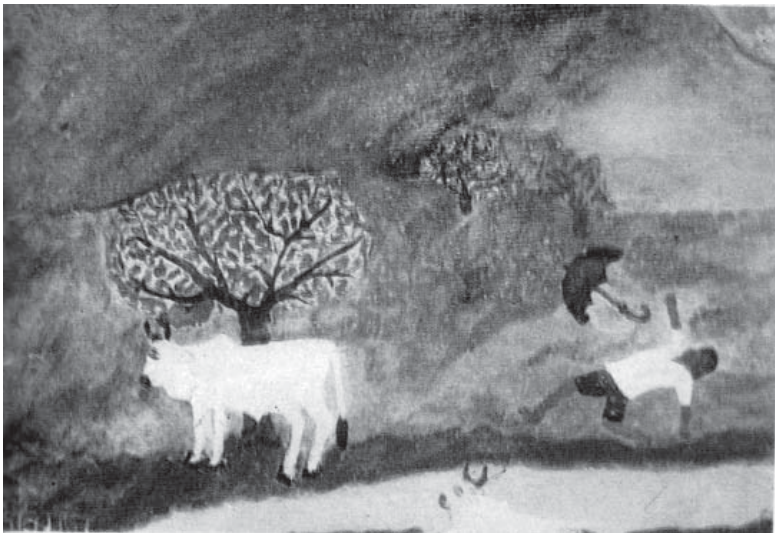

वर्षा का दिन, छात्र, 12-13 वर्ष

मैंने प्रश्न का उत्तर सरलता-से समझाने की कोशिश की। मैंने कहा कि जब कोई इन्सान कुछ कहना चाहता है, और उसे खोलकर और विस्तार से बताना चाहता है तो वह उसे कागज़ पर लिख देता है। उसके बाद उसे होशियारी से ठीक-ठाक करके किसी प्रकाशक से पूछता है कि क्या वह इस पुस्तक को प्रकाशित करना चाहेंगे। अगर प्रकाशक को 'पुस्तक' पसन्द आती है तो वह उसे स्वीकार कर लेता है और पुस्तक की दर्जनों या सैंकड़ों कॉपियाँ छापकर बाज़ार में रख देता है।

वह बालक इस उत्तर से सन्तुष्ट नहीं हुआ क्योंकि उसका प्रश्न तो यह था कि पुस्तक को कैसे लिखते हैं। यह नहीं कि वह प्रकाशित कैसे की जाती है।

वह तो पुस्तक लिखने की विधि जानना चाहता था। मैंने उससे कहा कि अगर पुस्तक लिखनी है, किसी से कुछ कहना है या विस्तार से बताना है तो उसे वह उसी प्रकार लिख सकता है जैसे वह एक पत्र लिख रहा हो। उस बच्चे को सुझाव अच्छा लगा। उसने मुझसे कहा कि वह एक पुस्तक लिखना चाहता है। मैंने उसे सुझाया कि कल जब वह कला की कक्षा में आए तो इस बात को उठाए। वहाँ और भी बच्चे होंगे – हो सकता है और भी बच्चे पुस्तक लिखना चाहें।

अगले दिन जब कला वर्ग में सब बच्चे आ गए तो उसने तुरन्त वह प्रश्न उठाया, और किसी भी अन्य चर्चा से पूर्व, पिछले दिन की बात पर चर्चा करने का आग्रह किया। "लोग पुस्तकें कैसे लिखते हैं?" बिलकुल पिछले दिन की तरह चर्चा आरम्भ हुई जिसमें अधिकतर बच्चों ने बड़े उत्साह के साथ भाग लिया। पहले कभी भी उन्हें यह नहीं सूझा था। उन्हें यह तथ्य मालूम ही नहीं था कि पुस्तक वे भी लिख सकते हैं। मैंने सारी कक्षा से पूछा, "तुममें से कौन-कौन पुस्तक लिखना चाहेगा?" करीब-करीब सभी ने हाथ उठाया। मुझे कोई ताज्जुब नहीं हुआ। मैं जानता था कि जब असलियत सामने आएगी तब वे पुस्तक लिखने का खयाल छोड़ देंगे।

अगला कदम था पुस्तक का विषय चुनने का। यह ज़रा और भी कठिन था – कइयों के लिए। क्लास में तेरह बच्चों में से छह ने आखिर निर्णय ले लिया। प्रोजेक्ट का काल पन्द्रह दिन का रखा गया। उन्होंने अपने-अपने विषय चुने । एक ने 'महाभारत', एक ने 'रामायण', तीसरे ने भगवान कृष्ण के बचपन की कहानी। और बाकी तीन ने कहा कि वे अपने प्रिय 'सन्तों' की जीवनी लिखेंगे – 'मीराबाई', 'सखुबाई' और 'ज्ञानेश्वर'।

काफी चर्चा के बाद तय हुआ कि वे शिक्षकों एवं गाँव के ज्ञानी व्यक्तियों से चर्चा करेंगे। वे जानकारी जमा करेंगे, फिर शिक्षकों और साथियों के साथ बैठकर उनका सम्पादन इत्यादि

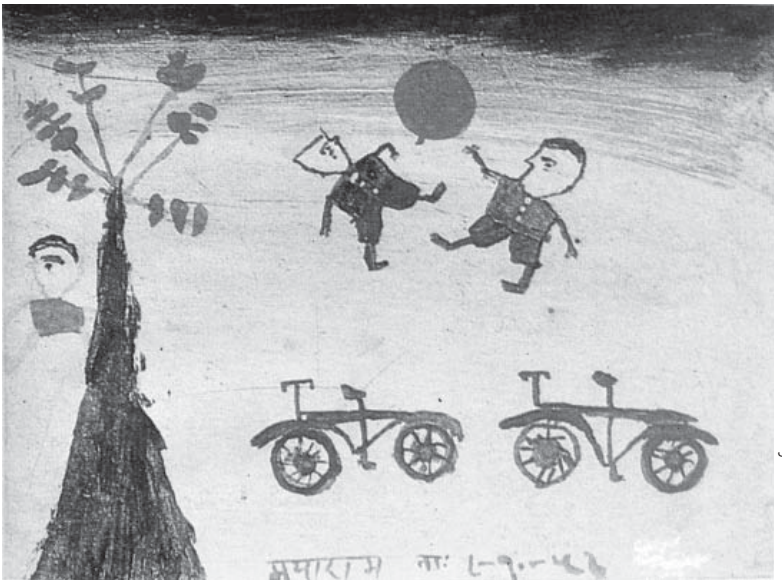

छात्र, 11-12 वर्ष

करेंगे। उसे सुन्दर लिपि में लिखेंगे और जैसे हो सके अलंकृत करेंगे। सबने तय किया कि हर पुस्तक में उसके विषय पर कम-से-कम दस चित्र होंगे और प्रकाशित पुस्तकों की तरह सबकी जिल्द बनाएँगे। पुस्तक में विषय-सूची, पृष्ठ-संख्या इत्यादि सब होंगे। आखिर में पाठशाला में पुस्तकों का उद्घाटन करेंगे। हर लेखक को अपना-अपना 'स्टाइल' और 'डिज़ाइन' रखने की पूरी-पूरी छूट होगी। मेरी ज़िम्मेदारी केवल लेखक और प्रकाशक का साथ देने की होगी।

काम बड़ी मेहनत का रहा। रोज़ करीब-करीब बारह घण्टे, पन्द्रह दिन तक काम किया। हाँ, यह सभी को बड़ा भाया। यह बड़ा शिक्षाप्रद काम भी रहा।

अब मेरी ज़िम्मेदारी थी कि बाकी शिक्षकों और कार्यकर्ताओं को यह आश्वासन दूँ कि इन विद्यार्थी लेखकों को 15 दिन का काम करने के लिए पूरी-पूरी छूट दी जाए। उन्हें यह भी छूट मिले कि जिनसे वे राय या मदद लेने के लिए आश्रम में या पास के गाँव में जाकर मिलना चाहें, उनके पास जाने की इजाज़त दी जाए। उन्हें अन्य कक्षाओं में भाग न लेने की भी छूट हो।

केवल इन छह बच्चों के लिए ही नहीं, सारी पाठशाला के लिए यह बड़ा ही निराला और महत्वपूर्ण अनुभव रहा। मेरे लिए तो यह एकदम

नया और अनूठा अनुभव था। पन्द्रह दिनों तक ये बच्चे क्लास में, जो मेरे घर से लगी हुई थी, सुबह-सुबह आ जाते थे और सूर्यास्त तक काम में लगे रहते थे। यहाँ तक कि लगभग रोज़ ही मुझे ज़बरदस्ती उन्हें उठाकर शाम को छात्रालय में भेज देना पड़ता था। जब भी नाश्ते, भोजन वगैरह की घण्टी बजती तब भी मुझे वैसा ही करना पड़ता था। कभी भी किसी को यह याद दिलाने की ज़रूरत नहीं पड़ी कि पन्द्रह दिन होने वाले हैं या हो गए हैं।

सबसे अधिक कठिनाई उन तीन बच्चों को आई जो अपने 'कवियों' या 'लेखकों' की पुस्तक लिख रहे थे। रामायण और महाभारत की कहानियाँ तो सबके कानों और दिमागों में भरी थीं परन्तु सन्तों की कविताएँ और जीवन वृत्तान्त के लिए उन्हें काफी नई खोज करनी पड़ी। वे अच्छी तरह जानते थे कि उन्हें इसके लिए बहुत मेहनत करनी पड़ेगी। आश्रम और पाठशाला के सदस्यों व शिक्षकों से भी काफी मदद लेनी पड़ी।

ठीक पन्द्रह दिन में छह पुस्तकें प्रकाशित की गईं। एक लेखक ने तो जिल्द के पीछे वाले पन्ने पर 'हमारे प्रकाशन' कहकर सारी छह पुस्तकों का 'विज्ञापन' भी दे दिया। एक बच्चे ने बड़ी भाव भरी आवाज़ में मुझसे कहा, "आज तक भी मैंने यह विश्वास नहीं किया था कि हमारी पुस्तकें इतनी अच्छी होंगी।" दूसरे ने ज़ोर-से चिल्लाकर कहा, "हाँ, हमें तो यह विश्वास ही नहीं था कि पुस्तकें होंगी या कुछ और!"

शिक्षा का उद्देश्य: आनन्द

इस परियोजना की सबसे बड़ी

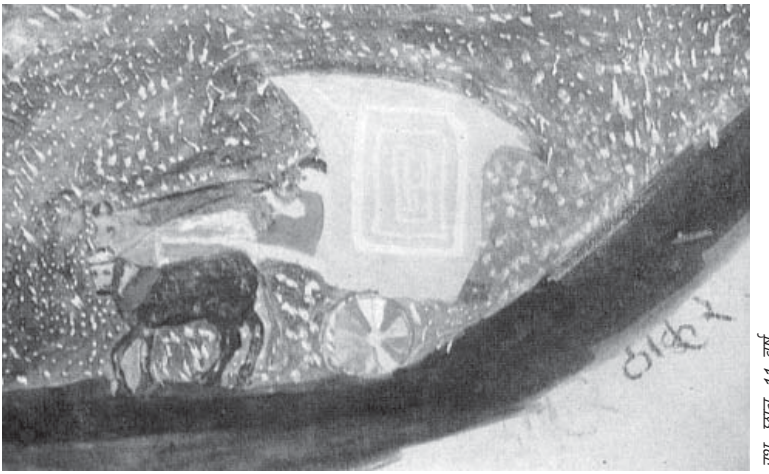

रथ, छात्र, 11 वर्ष

उपलब्धि थी बच्चों में आत्मविश्वास का जागना और अपनी छवि को सुन्दर बनाना। मेरे लिए इससे बच्चों की आन्तरिक दुनिया की खिड़की खुली, बच्चों की दुनिया और उनकी आन्तरिक शक्ति के दर्शन हुए। उन्होंने वह साबित किया जो अनेक सयानों की हिम्मत के बाहर की चीज़ थी। इन बच्चों के आत्मचित्रों का बड़ा स्वस्थ विकास हुआ। मैं जानता ही था कि कला मनुष्य के स्वज्ञान को बढ़ावा देती है। मैं यह भी जानता था कि आत्मप्रकटन आत्मज्ञान का विकास करता है, लेकिन यह प्रयोग मुझे आत्मप्रकटन की जितनी गहराई तक ले गया, उसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था। जब एक बालक को यह जानकारी हो जाती है कि उसके भीतर सृजनात्मकता का विशाल स्रोत है, उसका आत्मविश्वास और सौन्दर्य की तरफ झुकाव बढ़ जाता है और तब वह हिम्मत भी हासिल कर लेता है।

सृजनात्मक प्रवृत्तियों के द्वारा जो अनुभव उन्हें मिलते हैं, वे उन पर गहरा असर डालते हैं। कला के प्रति रुचि उनके आनन्द का स्रोत बन जाती है। अगर शिक्षकों को यह विश्वास हो जाए कि 'आनन्द प्राप्ति' शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है तो कला-शिक्षा स्वाभाविक ही शिक्षा की बुनियाद बन जाएगी।

देवी प्रसाद (1921-2011): कुम्भकारिता कला के प्रख्यात कलाकार, अनुवादक। देहरादून में जन्मे देवी प्रसाद ने 1944 में शान्ति निकेतन से कला स्नातक की उपाधि प्राप्त की। यहाँ उन्हें रवीन्द्रनाथ ठाकुर का सान्निध्य भी प्राप्त हुआ। बच्चों के लिए कला और शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने सेवाग्राम गए जहाँ गाँधीजी की शिक्षा पद्धति की पत्रिका *नई तालीम* का सम्पादन भी किया। वर्ष 2007 में ललित कला अकादमी द्वारा 'ललित कला रत्न' से सम्मानित।

सभी चित्र: नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित देवी प्रसाद की पुस्तक *शिक्षा का वाहन कला* से साभार।

यह लेख राजकमल प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पुस्तक *सृजनात्मक और शान्तिमय जीवन के लिए शिक्षा* के लेख 'कला शिक्षा की बुनियाद' का सम्पादित रूप है।

सन्दर्भ:

1. फ्रांज़ सिज़ेक, विलहैल्म वियोला की 'चाइल्ड आर्ट' नामक पुस्तक से, यूनिवर्सिटी ऑफ लन्दन प्रेस लि., लन्दन, 1945, पृ. 33
2. प्लेटो 'द रिपब्लिक' पैंग्विन बुक्स, 1995